ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3586836

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH – GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository

Arts

पारम्परिक कला-संस्कृति से प्रेरित प्रयोगधर्मी कलाकार

डॉ0 अर्चना रानी [1]
[1] विभागाध्यक्ष एवं ऐसो0 प्रोफे0: ड्राइंग एवं पेंटिंग विभाग, रघुनाथ गर्ल्स (पीजी) कॉलिज, मेरठ

सारांश-
भारत की कला-संस्कृति में परम्परा का अनुपसरण सदैव ही दिखाई देता रहा है, बस वह समयानुसार पहले से कुछ नवीन रुप लिये परिलक्षित होता है। वस्तुतः परम्परा का प्रादुर्भाव मानव स्वभाव एवं परिवेश के सामंजस्य से हुआ है। इसके अनेक तत्व एवं मूल्य हैं जो सतत् सर्वाभौमिक एवं गतिशील हैं। अनेक प्रयोगधर्मी समकालीन चित्रकारों ने पारम्परिक कला-संस्कृति को अपने प्रयोगों में समाहित करके नवीन कला-स्वरुपों, प्रत्ययों को जन्म दिया है। फलस्वरुप उनकी कृतियों में समसामयिक जीवन दर्शन की झलक के साथ-साथ परम्परा के दर्शन भी होते हैं जिससे विगत, वर्तमान एवं भविष्य की कला में एकसूत्रता दिखाई देती है। ऐसे प्रयोग जब प्रकट होते हैं तो वह चमत्कार बन जाते हैं। इस सन्दर्भ में चित्रकार यामिनी राय, पी0एन0 चोयल, रामगोपाल विजय वर्गीय, किरन मोन्द्रिया, प्रभा शाह, ललित शर्मा जैसे अनेक नाम उल्लेखनीय हैं। इन सभी ने आधुनिक एवं परम्परा के समिश्रण से भारतीयता लिये समसामयिक कला को नवीन आयाम प्रदान किया।

मुख्य शब्द – पारम्परिक कला, प्रयोगधर्मिता, संस्कृति, समसामयिक, सृजन, सौन्दर्य, आदर्शवादी

Cite This Article: डॉ0 अर्चना रानी. (2019). "पारम्परिक कला-संस्कृति से प्रेरित प्रयोगधर्मी कलाकार." *International Journal of Research - Granthaalayah*, 7(11SE), 172-180. https://doi.org/10.5281/zenodo.3586836.

प्रस्तावना-

भारत में कला आदिकाल से ही परम्परा संस्कृति की एक धारा के रुप में प्रवाहित रही हैं। समयानुसार इसमें अनेक नवीन धारायें मिलती चली गईं और आज यह हमारे समक्ष समसामयिक कला के रुप में परिलक्षित है। इस अनवरत् प्रवाहमान होने के पीछे जो चिन्तन है वही इसके मूल उत्थान का कारण भी है जो अपने साकार रुप में प्रयोगशीलता के साथ-साथ परम्परा का मूल किये प्रतिष्ठित है। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का समग्र प्रकार है। हमारा जीवन ढंग ही हमारी संस्कृति है। उनके अनुसार धर्म, दर्शन, साहित्य और कला उसके अंग हैं। किसी देश और काल की सीमा से बंधे हुए हमारा घनिष्ठ परिचय या सम्बन्ध किसी एक संस्कृति से ही सम्भव है। वही हमारी आत्मा और मन में रमी हुई होती है, और हमारा संस्कार करती है। संस्कृति धीरे-धीरे पनपती है। यही बनायी नहीं जाती है इसे बनाने में सहस्रों वर्ष लगते हैं। परम्परा इनका महत्वपूर्ण अंग है। कला संस्कृति की सहायक एवं उसका दृश्य रुप रही है और भावभिव्यक्ति के माध्यम से मानव मस्तिष्क को शुद्ध बनाने में सहायक होती है। जब परम्परा, संस्कृति और कला एक दूसरे का साथ देते हैं। तो दोनों का विकास होता है। परन्तु कला और संस्कृति में विछोह से दोनों का अहित होगा। आधुनिकता को समसामयिक बना रहने के लिऐ कुछ नया

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3586836

करना होता है। नई सोच, नई परिभाषा, नयी तकनीक और नये सृजन आवश्यक हैं। सामसामयिक में प्राचीन नहीं चलता और यदि अपनी पारम्परिक कला को प्रयोग के साथ नये परिवर्तित रुप में प्रस्तुत किया जाये तो कला को एक सुद्दढ़ता मिलती है। वस्तुतः वही कलायें निरन्तरता लिये होती हैं जो प्राचीन की नींव पर खड़ी होती हैं।

शोध-पत्र की उद्देश्य एवं प्रारूप-

पारम्परिक कला-संस्कृति पर आधारित कला में प्रयोग होंगे तो वह निश्चय ही समसामयिक होते हुए भी आधुनिक, भारतीय एवं आदर्शवादी होगी। ऐसी कला-संस्कृति में भारत की आत्मा की धड़कन होगी। समसामयिक कलाकारों पर यह निर्भर है कि वे प्रयोगधर्मिता को कैसे सार्थक मोड़ प्रदान करें। कला-संस्कृति में नवीन प्रयोग किस प्रकार करे, जिससे कला में मौलिकता के साथ-साथ भारतीयता की सुंगध हो, यही इस शोध-पत्र का उद्देश्य है।

भारत की पारम्परिक कला-संस्कृति हमारे जीवन का एक अविच्छिन्न अंग है। इसकी क्रमबद्धता पुस्तकों, चित्रों के माध्यम से देखी जा सकती हैं। आज समसामयिक कला के अनेक स्वरुप हैं। व्यक्तिवादिता होने पर रुप-कुरूप, मूर्त-अमूर्त, अभिव्यक्ति-अभिव्यक्तिहीनता सभी- विभिन्न कला माध्यमों एवं कलाकारों की कृतियों में परिलक्षित हैं। लेकिन आज भी कुछ कलाकार ऐसे हैं जिन्होंने पारम्परिक कला-तत्वों से प्रेरित होकर कला-सृजन किया है तथा भारतीय कला में 'भारतीयता के गुण को अक्षुण्ण रखा है। ऐसे ही कतिपय कलाकारों की कला का वर्णन इस शोध का प्रारूप है।

पारम्परिक कला चित्रों का इतिहास-

भारतीय कला-संस्कृति में पारम्परिक कला-चित्रों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। हमारी संस्कृति के महान प्रतीक 'लघुचित्रों' ने संसार के अत्यन्त प्राचीन देशो के कला-मर्मज्ञों को अपनी ओर आकर्षित किया है और आधुनिक समय में भी कर रहे हैं। कला-संस्कृति के अमूल्य प्रतीक इन लघु चित्रों की परम्परा में पहाड़ी, मुगल एवं राजस्थानी शैली का स्थान प्रमुख रहा है।

सत्रहवीं-अठ्ठारहवीं शताब्दी तक यह कला-परम्परा बहुत प्रचलित रही। इस कला-परम्परा के चित्र देश-विदेश के राष्ट्रीय एवं निजी संग्रहालयों एवं विथिकाओं की शोभा बढ़ा रहे हैं। अजन्ता शैली के पश्चात् भारत वर्ष के कला के अन्तर्गत एक नई प्रयोगधर्मिता की शुरुआत हुई, जिसके अन्तर्गत चित्रण कार्य गुफाओं एवं भित्तियों से उतर कर कागज एवं ताडपत्र पर आ गया। इन चित्रों के निर्माण में कलाकारों को कई-कई दिन एवं महीनों तक लग जाते थे। एक बाल की तूलिका द्वारा महीन चित्रण एवं मीनाकारी इस कला-परम्परा की विशेषता थी। लघु चित्रकला मूलतः द्विआयामी है तथा द्विआयामी होने के कारण ही इसकी सृजनात्मकता का अभूतपूर्व विकास हुआ है साथ ही तीसरे आयाम को भी बड़ी खूबी से दिखाया गया है।

उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे-पाँचवे दशक के आते-आते विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक कारणों से राजदरबारों की लघु चित्रण कला-परम्परा अतीत की वस्तु हो गई। सदी के मध्य तक आते-आते पारम्परिक कला का मूल्य और उनका व्यवहार लगभग समाप्त हो गया। यह परिवर्तन मोटे रुप से कला संस्कृति का अगुवा कहे जाने वाले बंगाल से प्रारम्भ होकर धीरे-धीरे सम्पूर्ण देश में फैल गया। भारतीय कला, यथा-राजस्थानी, पहाड़ी, दक्षिणी आदि क्षेत्रीय कलाओं का अस्तित्व लुप्त हो गया जबकि ये कलायें व्यक्तिवादी की अपेक्षा समष्टिवादी अधिक थीं। लेकिन बंगाल स्कूल के आते ही व्यक्तिवादी नवविचारधाराओं से ओत-प्रोत पाश्चात्य कला का स्वरुप प्रभावी होता गया। इस पाश्चात्य प्रभाव की होड़ सर्वत्र फैल गई तथा नवीन-नवीन

विचारधाराओं एवं प्रयोगों वाली कलायें हावी होने लगीं। ऐसे समय में अनेक कलाकार ऐसे भी आयें जिन्होंने भारतीय लघुचित्र शैलियों को आत्मसात् कर उन्हें एक निजी एवं मौलिक प्रदान किया तथा लघु चित्रों से प्रेरित प्रयोगधर्मी कलाकारों की श्रेणी में अपना नाम स्थापित किया। डॉ0 वशिष्ठ ने भी कहा है कि जब आधुनिकता का लक्षण 'पश्चिमीवाद' भारत में तीव्रता से आने लगा तब जो पारम्परिक कलाकार थे वह कैसे आधुनकिता के प्रभाव से वंचित रह सकते थे?[1] आजकल उच्च समाज की जीवन शैली का उद्देश्य पश्चिम का अनुकरण करना हो गया है। ऐसी परिस्थितियों में पाश्चात्य प्रभाव के कारण भारत में पारम्परिक एवं आधुनिक कलायें साथ-साथ चलने लगीं। बंगाल स्कूल के साथ भारतीय कला-संस्कृति के रुप में हमारे पारम्परिक मूल्यों के सौन्दर्यपरक अभिज्ञान के इस अधःपतन के विरूद्ध सर्वप्रथम ई0वी0 हैवल तथा कुमार-स्वामी ने आवाज उठाई। उन्होंने तत्कालीन कला स्कूल की विधिकाओं से नग्न, यूरोपियन तथा निरर्थक छापा चित्रों के हटाकर भारतीय कलाचित्रों को स्थान दिया।

समसमायिक कला एंव प्रयोग-

किसी भी देश की आधुनिक कही जा सकने वाली कला पर ऐसे अनेक प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव रहते हैं जो तत्काल-पूर्व या पुरा-पूर्व के कला आंदोलनों से सम्बद्ध होते हैं। इस तरह बिना किसी पूर्व-प्रभाव की निपट मौलिक कला की बात एक कल्पना मात्र है। कई बार ये प्रभाव एक विशेषरूप में इस कारण अद्दश्य रह जाते हैं क्योंकि उनका आधार विदेशी होता है। आज के अंतर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान के युग में यह स्थिति और अधिक मुखर हो गयी है। वस्तुतः कला क्रिया विधि से सम्बन्धित है और किसी भी क्रिया विधि को संस्कृति बनने में युग लगते हैं और आधुनिकता में इनकी प्रतीक्षा सामर्थ्य सम्भव नहीं है। यहाँ तो अभिव्यक्ति सघन और शीर्घ साध्य चाहिए। अतः नित-नये प्रयोगों की आवश्यकता होती है। प्रश्न होता है कि कला में प्रयोग किस लिये किये जाये? निश्चय ही कला यदि अभिव्यक्ति का साधन है तो जिस प्रकार की अत्यधिक अभिव्यंजना हो सके इसके लिए प्रयोग हो सकते हैं। आधुनिक संस्कृति का एक ध्येय व्यवसायिक भी हैं। आज के युग में सौन्दर्य और सृजन दोनों ही बेचे जाते हैं। अतः दोनों ही क्षेत्रों (सौन्दर्य और सृजन) में बाजार को देखते हुये नयेपन अर्थात् नये प्रयोगों की आवश्यकता होती है।[2] कला व्यवसाय में मौलिकता अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है (कॉपी राइट व्यवस्था मे)। अपने को दूसरों से अलग दिखाने की भी आवश्यकता होती है परन्तु यह व्यवसाय है, व्यापार है, संस्कृति नहीं है।

प्रकृति के रहस्यों की एक झलक पा जाने वाला भी निरन्तर आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है; ये प्रयत्न ही 'प्रयोग' बन जाते हैं। प्रयोग इस अर्थ में कि इनसे किसी-न-किसी प्रकार से कुछ-न-कुछ नयेपन अथवा विचित्रता के द्वार खुलते हैं। यह नयापन ही प्रयोगकर्ता की आनन्दानुभूति का कारण बनता है। इस प्रकार प्रयोगधर्मिता मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में सक्रिय परिलक्षित होती है। प्रयोगों की पद्धतियाँ जब विधिवत् रूप ले लेती हैं तो परम्परा अथवा रूढ़ि कही जाती हैं। सामाजिक जीवन के प्रतिदिन के व्यवहार में ये रूढ़ियाँ तथा परम्पराएँ प्रमुख भूमिका का निर्वाह करती हैं परन्तु प्रकृति क्षेत्र में तथा सामाजिक जीवन में निरन्तर विकास होता रहता है जो ऐसी परिस्थितियों को भी जन्म देता है जिनमें अनेक परम्परायें तथा रूढ़ियाँ शिथिल अथवा अर्थहीन हो जाती हैं। प्रयोगों से प्राचीन परम्पराओं को तो नव-जीवन मिलता है साथ ही नयी परम्पराएँ भी स्थापित होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक युग में, मानव सभ्यता के विकास के प्रत्येक चरण में परम्परा तथा प्रयोग- दोनों साथ-साथ चलते रहते हैं। कभी दोनों में द्वन्द्व भी होता है और कभी समझौता भी।

समसमायिक कला परिप्रेक्ष्य में पारम्परिक कला-तत्व-

अब अगर हम प्राचीन बातों से हटकर इन पारम्परिक कलाओं का मूल्यांकन आधुनिक कला के सन्दर्भ में करें तो पायेंगे कि अनेक चित्रकार पारम्परिक कला-चित्रों से प्रेरणा लेकर चित्रकारी कर रहे हैं। भारतीय चित्रों

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3586836

में वह कलातत्व एवं सिद्धान्त हैं जो द्विआयामी कला का मूल होते हैं। अगर हम आधुनिक कला का सूक्ष्म अध्ययन करें तो पायेंगे कि आधुनिक चित्रकला मूलतः एवं वास्तविकता में द्विआयामी ही है। अतः आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इस कला से प्रेरणा पाकर चित्रकारों ने कला को एक ऐसे सृजन युग में प्रवेश कराया तथा जो एक ऐसा संसार बना जिसे देख विश्व और प्रतिष्ठित कला समीक्षक चकित रह गये। ये प्रेरणा एवं प्रयोग के ऐसे स्वर थे जिन्हें अनेक भारतीय चित्रकारों ने अपने कला सृजन को प्राचीन कला-परम्परा के समीप रखा। ऐसा भी नहीं है कि भारतीय चित्रकारों ने पारम्परिक चित्रों से प्रेरणा ग्रहण की हो। जैसे- माइकलएंजिलो एवं लियोनार्डो आदि की कला ने यूनान की कला से प्रेरणा ग्रहण की, पिकासो ने अफ्रीकन कला से, मॉडर्न अमेरिकन पेण्टिग्स ने वहाँ की माया (maya) कला से, जपानी चित्रकारों ने वहाँ की काशठ कला से तथा हेनरी रूसो ने बंगाल की पटुआ कला से प्रेरणी ली। इसी प्रकार अगर हम भारत का उदाहरण लें तो देखते हैं कि अजन्ता शैली के चित्रों में अभिव्यक्ति की समानता दिखाई देती है। यामिनी राय अजन्ता के साथ-साथ बंगाल में रहते हुए वहाँ बनने वाली मृणमूर्तियों से भी प्रेरित रहे। हुसैन की प्रारम्भिक कृतियों में बहुत हद तक पिकासों की कला शैली का प्रभाव है। ये सब कला शैलीयाँ और कलाकार विश्व में उच्चतम स्तर पर पहुँच प्रसिद्ध हुए। सत्य यही है कि प्रत्येक जन प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से प्राचीन कलाकृतियों या पूर्ववर्ती चित्रकारों से प्रभावित आवश्यक होता है। इस सन्दर्भ में मुझे चित्रकार देगाँ की बात का स्मरण हो आया है जिसमें चित्रकार रूओंल, देगाँ से वार्तालाप में बता रहे थे कि उनकी आरम्भिक कृतियों से विभिन्न कलाकार प्रभावित हुए। यह सुन देगाँ ने कहा था कि क्या तुमने किसी एक व्यक्ति को देखा है जो बिना किसी बाहरी सहायता के स्वयं के प्रयास से ही उत्पन्न हो गया हो?'3 देगाँ ने इस उत्तर द्वारा प्राचीन कला से नीवन सृजन के सम्बन्ध को रेखांकित किया था। समय के साथ परिवर्तन प्रकृति का नियम है जिसमें नवीन सृजनात्मक कला पूरी परम्परा को नहीं तोड़ती, वरन् कुछ बिन्दुओं पर नया आयाम जोड़कर देखने का दायरा विस्तारित करती हैं। जब हम प्राचीन एवं नवीन सोच का सम्मिश्रण करते हैं तो एक स्थायित्व लिये हुए असीम आनन्द प्रदान करने वाला सृजन होता है। भारतीय कलाकार के विषय में कहा गया है कि वह खोज नहीं करता, अपितु उपलब्ध करता है।4 चित्रकारों ने उपलब्ध सामग्री से ही प्रेरणा पाकर नवीन प्रयोगों द्वारा निजी शैली विकसित की है। किसी ने लघु चित्रों में अंकित प्राकृतिक छटा को आधार लेकर नवीन प्रयोग किये तो किसी ने नारी आकृति के कोमलांकन को अपने चित्रों का आधार बनाया। अनेक चित्रकारों ने प पशु-पक्षी, नदी-पर्वत आदि को अपने संयोजन में प्रतीक रूप में स्थापित किया। कहने का तात्पर्य यह है कि आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हम जो चित्र देखते हैं उनमें पारम्परिक भारतीय चित्रों के दर्शन मिलते हैं जो हमें अन्तराल अभिव्यक्ति में, पोत निर्माण, में वास्तु के नियोजन में, मानवाकृतियों के आकार निर्माण में तथा भाव द्वारा चित्रकार जो सन्देश देना चाहता है, में देखने को मिलते हैं।

परम्परा एवं आधुनिकता का समन्वय-

आज हम जो कुछ भी हैं वह परंपरा के कारण हैं साथ ही समसामयिक समाग्रहों के कारण। इसलिए हर समाज में हर पल एक वर्ग ऐसा रहता है जो परम्परा के उपजीव्य होते हुये भी आधुनिक है और उस आधुनिकता में गौरव का कारण भी ढूँढ़ता है। वह अपने देशकाल की कलात्मक धरोहर का अपने को वारिस मानते हुए अपने समसामयिक होने का दुष्कर रास्ता निकालता है। इस मार्ग में जाने का सबसे बड़ा खतरा यही है कि वह परम्परा के प्रवाह में चलता हुआ दिखने के कारण अपना अस्तित्व ही खो दे। इसके बावजूद वह कला की पारंपरिक ऊर्जा का संबल ग्रहण कर विश्वासपूर्व कोई मार्ग बनाता है तो अपने कलाकर्म के वर्तमान सन्दर्भ में भी वह सार्थकता देख सकता है। किन्तु कला में तत्काल- पूर्व की स्थिति इस अर्थ में भिन्न है कि पुरा-पूर्व की तरह उसकी रूढ़ियाँ नहीं बनी होती हैं- वह तो समसामयिक प्रवाह है कला-चेतना, का जिसके चालीस-पचास वर्षों के हम अनुवर्ती होते हैं। उस सृजनावधि में मंजिल की चेतना इतनी नहीं होती जितनी उसका अंग बनने की; उस मैराथन दौड़ में हिस्सा लेने भर की होती है। लेकिन जिसे हम परम्परा से

भिन्न आधुनिकता कह सकें उसका स्त्रोत यही होता है। अपने समय का अंग बनकर घटित होने की प्रबल कामना ही इसका आधार है। इसलिए यह पारंपरिक कलाबोध से जन्मी आधुनिक कलावृत्ति से ज्यादा नयी होती है। इसके लिए यह जरूरी नहीं कि वह उसकी तुलना में ज्यादा सशक्त हो। चित्रकला की इस स्थिति के अन्तर्गत आधुनिक कला के विविध आंदोलन अस्तित्व में आये हैं।

इसके अलावा एक प्रवृति जो कला-जगत में उभरती हुई दिखायी दे रही है। वह है, अपने पारंपरिक स्त्रोत की तरफ लौटने की; वहाँ से कलात्मक ऊर्जा ग्रहण करने की।[5] यह स्थिति परम्परा का आधुनिक हद तक विस्तार कर देने वाली स्थिति से सर्वथा भिन्न है। तत्काल-पूर्व के समसामयिक प्रभावों को कायम रखते हुए भी परंपरा की किसी शैली विशेष के प्रभाव को अपनी कला में प्रदर्शित करना इसका लक्षण है। इसका सम्बन्ध आधुनिकता से अधिक है और परम्परा से कम, चाहे ऊपरी तौर पर दिखने में यह परम्परा के ही विस्तार जैसी लगती हो।

पारम्परिक कला-तत्व से समन्वित समसामयिक चित्रकार-

भारतीय कला पुरातत्व या इतिहास नहीं है यह भारतीय संस्कृति के उलट-फेर के बीच युगों से अपना सन्देश एवं दायित्व लेकर इतिहास में समाविशट है। चित्रकार इसी भारतीय कला को अपनी ऐन्द्रिक लय एवं कलाकारों द्वारा जीवन्तता प्रदान करता है। जैन, अपभ्रंश राजस्थानी तथा पहाड़ी लघु चित्रकला से भारतीय आधुनिक चित्रकला को जीवन मिला। आज हमारी कला की गिनती विश्व की महान कलाओं में की जाती है। आज चित्रकार नवीन प्रयोग कर अमूर्त तथा बेसिर पैर के चित्रों का निर्माण कर रहे हैं तथा परम्पराओं का विद्रोह कर अपनी विषय शैली में सत्यता, सामाजिक क्रिया-कलापों तथा राजनीति जैसे तत्वों को महत्व दे अमूर्त या अर्थहीन चित्राकृति करने वाले कलाकारों से पृथक एक चित्रकार वर्ग ऐसा भी है जो पारम्परिक कला से प्रेरित हो निजी सृजन कर रहा है। ऐसे चित्रकारों में पी0एन0 चोयल, भूपेन खक्कर, कृपाल सिंह शेखावत, मोहन सामन्त, ललित शर्मा, तेज सिंह, सुजाता बजाज, बसन्त कश्यप, द्वारका प्रसाद शर्मा, कैलाश चन्द्र शर्मा, सत्य प्रकाश, राम गोपाल विजयवर्गीय, किरन मोन्द्रियाँ, छोटू लाल एवं प्रभाशाह आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सब चित्रकारों ने चित्रसृजन में अपनी-अपनी प्रतिभा एवं कुशलता का अधिकाधिक प्रयोग कर भारतीय कला को गौरवान्वित किया है।

उदयपुर शहर में रहने वाले परमानन्द चोयल कला जगत में अपने वाश, टेम्परा तथा लघुचित्रों के लिए प्रसिद्ध हैं। पहले यह वाश पद्धति में कार्य करते थे तदुपरान्त पारम्परिक और आधुनिकवाद से प्रेरित होकर चित्र बनाते हैं। लघुचित्रों से प्रेरित इनके चित्रों में 'वूमैन', 'विण्ड़ो', 'माउण्टेन रेंज', 'विलेज हट', 'परसेप्शन ऑफ उदयपुर, चित्तौड़' प्रमुख हैं। चित्रों में उनकी प्राचीन आकृतियों का आधुनिक आकृतियों में परिवर्तित भाव तथा उनका सृजनात्मक गुण उनके चित्रों की स्वाभाविकता को स्वच्छ एवं साफ रूप प्रदान करता है।[7] उनके पुत्र शैल चोयल चित्रकार, छापाचित्रकार तथा अपनी लघु चित्रशैली के अभिन्न रूप सृजन के लिए जाने जाते हैं। इन्होंने अपने चित्रों में राजस्थान के पारम्परिक लघुचित्रों की पृशठभूमि तथा सौन्दर्यात्मक पहलुओं को अपने आप आधुनिक रूप में उतार देते हैं। इन्हें 'कम्पोजिशन' नाम शीर्षक से ही अनेक चित्र बनाये हैं। इन्हें लगभग पचास सम्मान मिल चुके हैं। आज इनकी पहचान इनकी कला शैली द्वारा ही की जाती है। आज ये चित्रकार रूप में इतने प्रसिद्ध हो गये हैं कि शिक्षण कार्य छोड़ पूरी तरह से कला साधना में जुटे हैं। ये संवेदनाशील एवं कल्पनाप्रवण चित्रकार हैं। रंगों एंव रेखाओं के प्रयोगों में इन्हें महारत हासिल है। यह दोनों का प्रयोग मधुरता एवं सुसंस्कृत ढंग से करते हैं। प्राच्य गुणों से युक्त उनके भव्य चित्र अभिनव प्रतीकों का सृष्टि करते हैं।

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3586836

1. शैल चोयल

2. ललित शर्मा

3. किरण मोन्द्रियाँ

4. युगल किशोर शर्मा

6. रामेश्वर सिंह

ललित शर्मा उदयपुर के ही एक चित्रकार हैं जो राजस्थानी लघुचित्रों को आधुनिक रूप प्रदान करते हैं। इनके चित्रों में राजस्थानी वास्तु का प्रयोग प्रशासनीय है। द्विआयामी पृष्ठभूमि पर त्रिआयामी प्रभाव द्वारा ये दर्शक को भवन के अन्दर तक प्रवेश करा देते हैं। इनके चित्रों में रचना की कुशलता, कलाकारों की ओजिस्वता, ठोसपन, त्रिआयामी प्रभाव, रंग संगति की मनोहरता एवं कल्पना की प्रचुरता का अद्‌भुत सम्मिश्रण है। परम्परागत रूपाकारों के संयोजन द्वारा चित्र को नवीन कलेवर में प्रस्तुत करना इनकी शैली की मौलिकता है। पारम्परिक चित्रण के ही सिद्धहस्त कलाकार घनश्याम शर्मा ने परम्परागत चित्र विषयो को चित्रतल पर नवीन रूप में संयोजित कर प्रस्तुत किया है। 'गणगौर घाट पर स्नान करती महिलायें', 'चारा ढ़ोती भील स्त्रियाँ', 'पोलो', 'फकीर', 'हाथियों का युद्ध', आदि उनके महत्वपूर्ण चित्र हैं। मेवाड़ शैली के चटक रंगों का प्रभाव इनकी कृतियों पर स्पष्ट देखा जा सकता है। इनके चित्रों में जहाँ रंगों की कोमलता, शुद्धता, तथा वातावरणीय परिप्रेक्ष्य के भावों का प्रदर्शन है वहीं इनकी रेखाओं की कोमलता देखते ही बनती है। इसी प्रकार राजस्थान में ही जन्में पारम्परिक कला के युग पुरूश कृपाल सिंह शेरावत के चित्रों में अजन्ता राजस्थान, मालवा, जैन

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3586836

एवं पहाड़ी कलाओं के तत्वों एवं तकनीकों का सुन्दर समन्वय देखा जा सकता है। इन्होंने स्वयं भी लिखा है कि ''उनके चित्रों में इन सभी शैलीयों के कलातत्व विद्यवान होते हैं फिर उनमें 'भारतीयपन' तथा कृपाल सिंह की निजी शैली है।''8 उदयपुर में जन्में देवेन्द्र शर्मा के चित्रों में नाथ द्वारा एवं काँगड़ा लघुचित्रों का प्रभाव देखा जा सकता है। इनके चित्रों में अंकित चिड़ियाँ मेवाड़ शैली से ली गयी प्रतीत होती हैं। इनकी प्रसिद्ध कृतियों में 'रास लीला', मोर का चित्र, 'झूला झूलते राधा-कृष्ण' तथा 'अकबर दरबार' प्रमुख हैं। इनके चित्र पौराणिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भों की याद दिलाते हैं। महिला चित्रकार प्रभाशाह, छोटूलाल, नाथू लाल वर्मा एवं किरण मोन्द्रियाँ की पहचान भी उनके द्वारा बनाये गये लघु-चित्रों से प्रेरित प्रयोगधर्मी चित्रकला के द्वारा ही होती है। बचपन से ही किरण मोन्द्रियाँ को प्रकृति के प्रति आकर्ढाण था जो धीरे-धीरे गहरा होता गया। वह उदयपुर की पहाड़ियों, झीलों, झोपड़ियों, बावड़ियों, नदी-नालों, झरनों, पेड़-पौधों मंदिर, चट्टानों, कुँओं तथा खण्ड़हरों आदि पर चित्र बनाने लगीं। रंगों के साथ खेलते-खेलते आज कला उनके लिये इतनी ही महत्वपूर्ण हो गई है जितना कि शवास लेना। किरण मोद्रियाँ के नये चित्रों में प्रयोगधार्मिता के कारण अचानक एक बड़ा परिवर्तन आया है। उदयपुर की उपरोक्त पहाड़ियोँ, झीले तथा जीवन आदि सभी कुछ उनके चित्रों में है परन्तु वह सब नये सौन्दर्य रूप लिये आधुनिक सन्दर्भों को प्रस्तुत करते हुऐ उजागर हुआ है। तेज तूलिकाघात कई बार उनके चित्रों में संगीतमय थिरकन लिये सर्पीली रेखाओं में परिवर्तित हो जाते हैं। उनके सभी चित्रों में रंगों एवं तूलिकाघातों की क्रीड़ा है तथा रोलर से प्राप्त पोत (टेक्स्चर) का एक स्पंदन है। आज वह राजस्थान की आधुनिक कला जगत में नया अध्याय है।

किरण मोन्द्रियाँ जहाँ अपने चित्रों के रोलर द्वारा टेक्स्चर उत्पन्न कर पहाड़ों खण्ड़हरों के चित्र बनाती हैं वही युगल किशोर शर्मा के चित्र संगीत की लय में बंधे तूलिका के कोमल स्पर्शों से स्पन्दित हैं। द्रार्मा जी के कामधेनु चित्र श्रृंखला पर बने चित्र अपने में बेजोड़ हैं। चित्रों में प्राय धेनु की देह पर नारी का मुख मण्डल है तथा पंख भी लगे हैं। चित्रों में रंगों का सामन्जस्य तथा रेखाओं का कोमल प्रवाह देखते ही बनता है। जो सेरीग्राफी तकनीक का प्रभाव देता है। भारतीय विषय-वस्तु से युक्त उनके 'मार्डन' चित्र भारतीय पारम्परिक चित्रों से परिपूर्ण हैं। भारतीय कला संस्कृति की अनूठी छाप उनके चित्रों के हस्ताक्षर हैं। वस्तुतः अपनी निजी शैली के विकास के साथ-साथ कलाकार को रचनाधर्मिता के प्रति भी सदैव जागरूक रहना पड़ता है और यही प्रक्रिया उनकी कलात्मक परिपक्वता का संकेत देती है। श्री युगल किशोर शर्मा के चित्र परम्परा में रचे बसे विशिष्ट आग्रह के साथ सृजित हैं।[9]

राजस्थानी कला परम्परा को नवीन रूप में संजोने वाले एक अन्य चित्रकार श्री रामेशवर सिंह है। यह एक ऐसे चित्रकार हैं जिनके चित्र अपने अनूठेपन के लिये सभी को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उनकी संयोजित शैली में युक्त चित्रों में एक साथ बहुत कुछ होता है। एक ही कृति में अनेक मानवाकृतियाँ, रूप वैविध्य तथा धार्मिक चित्रण एक साथ देखने को मिलते हैं। उनकी कृतियाँ में रूपों का वैविध्य उनकी कार्यकुशलता का परिचायक है। राजस्थान की मारवाड़ शैली की मानवाकृतियों की सुड़ौल सौशठवता तथा रंग-संयोजन रामेशवर की कृतियों में अप्रत्यक्ष रूप में देखी जा सकती है। अपने काम में गहराई से डूबे रहने वाले इस चित्रकार ने भारतीय कला के पारम्परिक तत्वों को आधुनिक रूप में प्रस्तुत कर कला-जगत में एक नवीन आयाम स्थापित किया है।[10]

उपरोक्त समस्त चित्रकार अतीत के चितेरे मात्र नहीं, वरन् उनके चित्रों में 'वर्तमान' भी है। इनकी कृतियाँ सामाजिक, वैचारिक एंव सांस्कृतिक पुनर्सरंचना को प्रस्तुत करती हैं। ऐसी कृतियाँ ही सांस्कृतिक मूल्यों एवं ऐतिहासिक विशेषताओं का असली दस्तावेज होती हैं।

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3586836

पारम्परिक कला चित्रों पर प्रयोग करने वाले अनेक चित्रकार ऐसे भी हैं जिनके चित्र आधुनिक विशयवस्तु एवं प्रभावों से युक्त होते हुए भी हम उनमें परम्परा का आभास पाते हैं। उदाहरण स्वरूप हुसैन के चित्रों में लोक कला का अत्याधुनिक स्तर पर नव उन्मेश है साथ ही सिनेमा के बड़े पोस्टर बनाने वाली व्यवसायिक कला का। इन्होंने रामायण एवं महाभारत के सन्दर्भों को लेकर जो चित्र बनाये हैं उनमें लघुचित्रों की छाप दिखाई पड़ती है। गुलाम मौहम्मद शोख के चित्रों में लघु चित्रों में अंकित प्राकृतिक दृश्यों का सरल दृश्यांकन देखने को मिलता है। इसी प्रकार दिल्ली निवासी चित्रकार डी0एच0 सुरेश भी आधुनिक विषयवस्तु को लेकर तैल रंगों में समसामयिक जीवन के चित्र बनाते हैं लेकिन उनकी पृष्ठ भूमि में लघुचित्रों की प्रकृति का आभार दिखाई देता है। अगर हम उनके चित्र 'आदम' का उदाहरण लें तो उसमें प्राचीन एवं नवीन प्रयोगों का सुन्दर सम्मेलन है। चित्र के मध्य में आयताकार तिरछे चौखटे में एक दौड़ती सी पुरूशाकृति बनायी गयी है। बनारस के अमरनाथ शर्मा ने पारम्परिक चित्रो को अपने ढंग से ग्राफिक एवं एंचिग कला में उभारा है। इन्हीं के समान दिल्ली के ज्योति शुक्ला भी एंचिग में ही लघु चित्रों को लेकर नवीन प्रयोग करते हैं। पाम्परिक कला को लेकर काम करने वाले अन्य कलाकर गुजरात के बी0एस0पाण्डे, दिल्ली के नायर बिन्दु, सत्य प्रकाश, जयपुर के कैलाश चन्द्र शर्मा आदि अनेक चित्रकार इस विद्या में अपने ढंग से कार्य कर रहे हैं। मंजीत बाबा जैसे आधुनिक कला के चितेरे के राधा-कृष्ण विशयक चित्र परोक्ष रूप से लघु चित्रों से ही प्रेरित हैं। लघु चित्रों को लेकर काम करने वाले और भी चित्रकार हैं लेकिन शोध-पत्र की सीमा को देखते हुए उनका यहाँ विश्लेषण नहीं किया गया है जिन्होंने अपनी कला में लघु चित्रों पर प्रयोग करने की साहसिक उद्घोषणा की है।

पारम्परिक कला से सम्पृक्त समसामयिक कला की नवीन संभावनाये-

पारम्परिक कला से प्रेरित प्रयोगधर्मी भारतीय आधुनिक कला की नवीन संभावनायें क्या हो सकती हैं, अब जरा इस पर भी दृष्टि डालना है। वस्तुतः आज दर्शक पुनः आकृतिमूलक चित्रों को निहारना चाहता है। इतनी संघर्षपूर्ण व्यस्त दिनचर्या में थका व्यक्ति जब अनगढ़ तथा अर्थहीन चित्र देखता है तो उसका मन और थक जाता है, किन्तु जब परम्परा में बंधे आकृतिमूलक चित्रों को देखता है तो एक स्थाई मानसिक शन्ति, आनन्द को प्राप्त करता है। आज मूलतः आकृतिमूलक चित्रों की माँग बढ़ रही है। परम्परा एवं आधुनिक कला का सम्मिश्रण मनभावन भी लगता है। वस्तुतः कला का प्रथम कार्य है उस पर्दे रूपी आवरण को हटाना, जो समाज की नेत्रों पर गिरकर अंधेरा किये हुए है। इस प्रकार पारम्परिक चित्रों से प्रेरित कला से जनसमाज को एक नई दिशा मिलेगी तथा ऐसे चित्रण में सृजन की भी बहुत गुंजाइश भी है। ऐसी कला के निर्माण से एक आदर्श की स्थापना होगी एवं हम अपने जड़मूल से कटेंगे भी नहीं। दूसरी बात, हमारे पास प्राचीन भारतीय कला का क्रमवार इतिहास उपलब्ध है, किन्तु समकालीन कला में विभिन्न स्थानों पर ‘खिचड़ी’ कार्य होने से कोई प्रमाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं हो सकता।11 अतः आज आवश्यकता है कि ऐसा चित्रण किया जायें जिसमें इतिहास लेखन की संभावनाओं को ढूँढ़ा जा सके। एक अन्य बात, परम्परा की सबसे बड़ी क्षमता ‘भाव की दृढ़ता’ है। किसी भी देश की कला तभी समृद्ध होती है जब वह परम्परा से जुड़ी हो, लचीली हो तथा दूसरों के भाव को समापोषित कर सकती हो। परम्परा से जुड़ी कला का सर्वाधिक महत्व इसी बात में है कि उनमें जीवन के किसी न किस अंश की अभिव्यक्ति होती है और उनका एक सत्य अस्तित्व में आ जाता है।

निष्कर्ष एवं उपसंहार-

आज भारतीय कलाकार को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपना वर्चस्व कायम रखने के लिये अपने देश की सांस्कृतिक-विरासत को पकड़े रहना आवश्यक है! ‘पॉल क्ली’ कहते थे कि हम में अभी भी अन्तिम शक्ति की कमी है क्योकि हमें संपोषित करने वाली कोई संस्कृति नहीं है। सच तो यह है कि पाश्चात्य-कला वहाँ के कलाकारों की पीड़ाओं से उपजी कला है जबकि पूर्व की कला का आदि स्त्रोत आनन्द है और अंतिम कुण्ड

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3586836

भी आनन्द ही है। आधुनिक भारतीय कला-जगत में वे ही कलाकार मजबूती से टिके रह सकेंगे जो समाज और कला की नई चुनौतियों को ही स्वीकार नहीं करेंगे, अपितु अपनी सांस्कृतिक विरासत एवं परम्परागत कला सौन्दर्य और गौरव को भी समाहित करते हुये प्रयोगधर्मिता को अपनायेंगे।

आज पारम्परिक कला की अमूल्य धरोहर राज्यों की लापरवाही, सामान्य जन की अज्ञानता तथा व्यापारियों की धनलोलुपता के कारण नष्ट एवं विलीन हो रही है, तथा विदेशों में पहुँच रही है। सरकार तथा कलार्ममज्ञों को निश्चय ही इस ओर ध्यान देना चाहिये। आज लघु चित्रों के प्रदर्शन एवं प्रचार माध्यमों में उपयोग का प्रदर्शन एवं प्रचार करना अतिआवश्यक हो गया है।

निष्कर्ष रूप में, आधुनिक दृश्य कलायें नवीन प्रयोगों द्वारा माध्यम के स्तर पर भले ही विकसित हो चुकी हैं किन्तु ऐसी कलाकृतियों को सृजनात्मकता के नाम पर केवल 'निजी शैली' कहने से काम नहीं चलेगा। कलाकारों को प्रयत्न करना है कि वे अपने कला सृजन में जटिलता की ओर न जाकर सरलता की ओर जायें। अमूर्त संयोजन कुछ समय तो अच्छा लगता है पर बाद में पुराना हो जाता है। आकृतिमूलक भारतीयता में रचे-बसे चित्रों की माँग सदैव बनी रहती है। आज एक प्रवृत्ति निरन्तर उभरती दिखाई दे रही है वह है- अपने पारम्परिक स्त्रोत की ओर लौटने की, वहाँ से कलात्मक ऊर्जा एवं शक्ति संचित करने की।

सन्दर्भ-संकेत

[1] वरिष्ठ आर0के0 - दा फाउण्डर ऑफ मॉडर्न मूवमेण्ट इन पेण्टिंग ऑफ मेवाड़, मेवाड़: महाराजा भूपाल सिंह, 1984, पृष्ठ 24.
[2] राम विरंजन, समकालीन भारतीय कला, कुरुक्षेत्र: निर्मल बुक एजेन्सी, 2003, पृष्ठ 110.
[3] समकालीन कला-ललित कला अकादमी, नई दिल्ली: नवम्बर 1986, अंक 7, 8 पृष्ठ 13.
[4] मुखर्जी, राधाकृष्ण-भारतीय कला का विकास, इलाहाबाद: सरस्वती प्रेस, 1964, पृष्ठ 25.
[5] प्रकाश परिमल, समसामयिक कला में मिनिएचर तत्व, समकालीन कला, संख्या-6, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ - 86.
[6] शुक्ल, रामचन्द्र, भारतीय आधुनिक कला की भावी दिशा, इलाहाबाद: रुपशिल्प प्रकाशन, 1986, पृष्ठ 21.
[7] टुडेज स्टैण्डर्ड इन मॉडर्न इडीअम्स, राजस्थान: राजस्थानी संस्कृति, स्पेशल इशू, 1987, पृष्ठ 22.
[8] उपाध्याय, डॉ0 विद्यासागर -कन्टम्परेरी राजस्थान, जयपुर: राज्य ललित कला अकादमी, 1998, पृष्ठ 32.
[9] चौहान, दिलीप सिंह - राजस्थान की समसामयिक कला: एक दृष्टि, सम्पादक-डॉ0 ज्यो ज्योतिष जो जोशी, नई दिल्ली: ललित कला अकादमी, पृष्ठ 38.
[10] भोश, हेमन्त - राजस्थान में आधुनिक कला के पाँच दशक, कला दीर्घा, सम्पादक - अवधेश मिश्र अप्रैल -2003, अंक 6, लखनऊ, पृष्ठ 12.
[11] कासलीवाल 'भारती' डॉ0 मीनाक्षी - ललित कला के आधारभूत सिद्धान्त, राजस्थानी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2013, पृष्ठ 44.

*Corresponding author.
E-mail address: drachana.art@ gmail.com